(सिने-साक्षात्कार)

परदे की खिड़की और दरवाजे खोले जाने का सही समय यही है

(फ़िल्मकार एवं लेखक ताई तुगुङ से याई न्योकिर की बातचीत)

प्रस्तुति: याई न्योकिर

(यह बातचीत पुरानी है। इधर के वर्ष में अरुणाचल प्रदेश का चित्रपट संसार काफी बदला है। यह बात जिन दिनों हुई थी अरुणाचल प्रदेश के लोकप्रिय निर्देशक, पटकथा लेखक, गीतकार, कवि और पेशे से अध्यापक ताई तुगुङ प्रदेश में अरुणाचली सिनेमा के सुनहरे भविष्य का स्वप्न देख रहे थे। आज वे सपने साकार होते दिख रहे हैं, तो पुरानी बातचीत को आज की तारीख में याद किया जाना उचित प्रतीत हो रहा है।- संपादक)

याई न्योकिर : आप फ़िल्म निर्देशक, पटकथा लेखक, अभिनेता के साथ शिक्षक और युवा कवि हैं। इन अलग-अलग भूमिकाओं के बीच तालमेल किस तरह बैठा लेते हैं आप?

ताई तुगुङ : इस सवाल से मैं रोज जूझता हूँ। एक तो मैं शिक्षक हूँ और दूसरा फ़िल्म कलाकार। यह दोनों बिल्कुल अलग-अलग धारा के काम हैं; लेकिन साहित्यिक दृष्टि से देखेंगे तो मैं एक लेखक भी हूं जो सबसे जोड़े रखता है। मेरे लिए लेखन 'लिंक टेक्निक' है। 'ईटानगर-जीरो किलोमीटर' फिल्म मैंने लिखी है। मेरे कई नाटक हैं। कई एकांकियां हैं। इसके अलावे कई नुक्कड़ नाटक भी हैं। मैंने ये लिखे अवश्य हैं, लेकिन इनमें अभिनय का फैसला मेरा नहीं है। दरअसल, इन नाटकों को अच्छे अभिनेता अपने प्रदेश में मिलते ही नहीं हैं। कई बार मुझे खुद करके दिखाना पड़ता है। मैं जैसा चाहता हूँ वैसा करके दिखाने में वह भूमिका मैं खुद जीने लगता हूँ। हमारे लोग भी मुझे ही अभिनेता की तरह देखने लगते हैं और मैं एक लेखक से अभिनेता की भूमिका में आ जाता हूँ। ऐसा होता तो सायास है, पर एक बार रोल में आ जाने पर इससे निकलना मुश्किल हो जाता है। हाँ, इससे मेरी शिक्षक की भूमिका प्रभावित होती है। सो तो है, इसमें बैलेंस करना बहुत मुश्किल काम है। अभी हाल ही में मुझे वह रेखा खींचना पड़ रहा है, जिसमें मैं ऐसे मसलों में ही काम करूं जो एक शिक्षक की मूल जवाबदेही को बाधित न कर पाए। वैसे मेरे शिक्षक बने रहने में कोई कठिनाई नहीं है, लेकिन यह अवश्य है कि अब मेरे नाम के फ़िल्मी चेहरे चलने लगे हैं, तो लोग अप्रोच बहुत ज्यादा कर रहे हैं कि आप यह फिल्म कीजिए। मैं प्रोफेशनली हर जगह में जा या उपस्थित नहीं रह सकता, क्योंकि मैं सरकारी नौकरी के साथ बाउंड हूं।

याई न्योकिर : आपने 'ईटानगर-जीरो किलोमीटर' की बात की। इसका कैरक्टर चीमा लोगों के दिलोंदिमाग में बस गया है।

ताई तुगुङ : 'ईटानगर-जीरो किलोमीटर' फिल्म में आप देखी होंगी कि इसमें हीरों वाला कोई चरित्र नहीं है। यह समाज के मसले को अपने ऊपर लेकर कहने वाली फ़िल्म है। इसमें फ़िल्मी मसाला या हाई बजटिंग लैंड्स्कैप नहीं है। यह चीमा होना या इस तरह का शख्सियत बनना आसान नहीं है। लोग समझते हैं, चीमा कौन है? वह खुद इस कैरेक्टर को अपना मान लेते हैं। मैं समाज का पक्ष चुनता हूँ, तो मुझे विलेन या निगेटिव रोल करना भी जंचता है। मैं प्रतिपक्ष में खड़ा होकर जब कोई बात कहता हूँ तो वह कोई 'स्लैग' या 'जार्गन' नहीं है। ऐसा होने के पीछे समाज की आँख है जो वैसा होने या बनने के लिए मुझे चुन लेती है।

याई न्योकिर : नौकरी की बंदिश से कभी कोई कठिनाई महसूस नहीं हुई?

ताई तुगुङ : बिल्कुल कठिनाई महसूस होती है। एक बार मैं एक फिल्म कर रहा था 'करप्शन' के ऊपर और मुझे कॉलेज की परीक्षा के कार्य में लगा दिया गया। मैं फंस गया जैसे। इसी तरह कॉलेज में क्लास होती है तो मुझे लेना पड़ता है, लेकिन जो शूटिंग शेड्यूल है, वह गड़बड़ा जाता है। कठिनाई यह है कि मैं प्रोफेशनली एक्टिंग को आगे नहीं ले जा सकता क्योंकि बतौर शिक्षक मैं विद्यार्थियों की भावी जिंदगी के साथ खिलवाड़ नहीं कर सकता।

याई न्योकिर : आप फिल्म करने के लिए कैसे प्रेरित हुए?

ताई तुगुङ : फिल्म करने का फैसला बहुत सालों के बाद आया। कॉलेज के दिनों में मैंने भाषा सीखने की दृष्टि से एक रंगमंच का कार्यशाला ज्वाइन किया था। संस्कृत की शब्दावली में मेरी अच्छी पकड़ थी। लेकिन उर्दू के अंदाज़ को सीखना मुश्किल था। डॉ. अरविंद गौर जी दिल्ली अस्मिता थिएटर ग्रुप के निर्देशक थे। हमारे कॉलेज में आए, तो वहां से मुझे कार्यशाला में ज्वाइन करके भाषा को सीखने का मौका मिला। उन्हीं दिनों मुझे नाटक में मुख्य भूमिका के रूप में अभिनय करने का मौका मिल गया था। अंतर महाविद्यालय नाटक प्रतियोगिता में मुझे सर्वश्रेष्ठ अभिनेता का पुरस्कार मिला तो वहाँ से एक कलाकार मन ने जन्म लिया और संभावना इसमें यह थी कि मैं भी कुछ योगदान कर सकता हूँ। ऐसा ख्याल आया और फिर मैं नाटक लिखना शुरू किया। नाटक लिखते वक्त मैंने महसूस किया कि कार्यशाला के पूरे होने के उपरांत नाटक की एकमात्र प्रस्तुति या मंचन होती है। इस मंचन के बाद पात्र गायब हो जाता है। लंबे प्रतीक्षा के बाद हुए परफॉर्मेंस के क्षणों को हमेशा के लिए कैद करने का मन हुआ तो फ़िल्म एक सही विकल्प सूझा। 'ईटानगर-जीरो किलोमीटर' फिल्म के पहले हमने तीन फिल्म किए थे। वह भी 'दा कैच' नाम से एक डॉक्यूमेंट्री फिल्म है जो CCRD के लिए किया था। दूसरी फिल्म 'अंत एक रास्ते अनेक' यह एक बड़ी डरावनी फिल्म थी एकदम अस्त-व्यस्त और इसके बाद एक फिल्म बनी 'डॉक्टर आबो'। यह न्यीशी इलाकों में बहुत मशहूर रही और इसके लिए मुझे राज्य पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया। 'ईटानगर-जीरो किलोमीटर' फिल्म के लिए न्यीशी फिल्म फेस्टिवल में मुझे सम्मानित किया गया। इस मौके पर बेस्ट एक्टर के रूप में मुझे पहचान मिली। इसके बाद समाज व मेरे दर्शक वर्ग ने मुझे सपोर्ट किया और अभी भी कर रहे हैं।

याई न्योकिर : अरुणाचल प्रदेश में चलचित्र क्या स्वतंत्र मुकाम हासिल कर लेगा?

ताई तुगुङ : हां, मैं यहाँ चलचित्र के निर्माताओं के साथ, रचनाकारों के साथ लगातार संपर्क में हूँ। मैं महसूस कर सकता हूँ कि आगे चलचित्र की अपनी एक इंडस्ट्री होगी। क्योंकि जो फिल्में यहाँ बनेगी वह अद्भुत होंगी। बस शर्त यह है कि फ़िल्म इंडस्ट्री स्थापित होने की दिशा में ठोस कदम उठाया जाए। 'ईटानगर-जीरो किलोमीटर' फिल्म के बाद जो दूसरी फिल्म बनी है उसने काफी पैसा कमाएँ हैं। निर्देशकों को पैसा मिल रहा है और अभिनेताओं को भी। मुझे लगता है कि इसको ऑर्गेनाइज तरीके से आगे जाने की जरूरत है। एक दशक के अंदर यह और ऑर्गेनाइज और सिस्टमेटिक होगा क्योंकि अब सरकार भी साथ देने लगी है। जल्द ही जमीन पर बदलाव दिखेंगे। कई कलाकार एनएसडी पहुंचे, आईआईएफटी में दाखिला हुआ। यहाँ भी फ़िल्म प्रशिक्षण के

केंद्र खुल गए हैं। फ़िल्म में रुचि और प्रदर्शन की मांग बढ़ी है। आशा है, चलचित्र का क्षेत्र स्वतंत्र मुकाम बना ले।

याई न्योकिर : आगे की योजना या अपनी जिम्मेदारी को कैसे देखते हैं?

ताई तुगुङ : मैंने राजीव गांधी विश्वविद्यालय से एम.ए की पढ़ाई की है। यहां गेस्ट लेक्चरर भी रहा। अभी कॉलेज में पढ़ा रहा हूँ। मैंने महसूस किया है कि हिंदी के विद्यार्थियों में आत्माविश्वास की बहुत कमी रहती है। उनको प्रेरित करने के लिए लिखने का कार्य मुझे करना ही होगा और उन्हें यकीन दिलाना होगा कि अभिनय करके भी नाम कमाया जा सकता है। यह यकीन मैंने खुद में पैदा किया है। मुझे इस तरह के हिंदी के विद्यार्थी का निर्माण खुद करना होगा। हिंदी से जो संभावनाएं बनती हैं, उन संभावनाओं को अग्रिम पंक्ति में लेकर मुझे खुद खड़ा रहना होगा। यह मेरी अपनी समझ है। मेरी इल्तजा होगी कि यह मैं कह रहा हूँ तो इसे एक अहंकार के रूप में न देखा जाए। लेकिन कम से कम इस समय की सच्चाई यही है। हिंदी के विद्यार्थियों में आत्मविश्वास की बहुत कमी है। जैसे ही नौकरी लग जाती है बस उनको फिर कुछ करना नहीं है। मुझे यह बहुत अपर्याप्त लगता है। जितना मैंने किया है, वह भी बहुत कम है। हमें और ऑर्गेनाइज तरीके से बढ़ना चाहिए क्योंकि हम अंग्रेजी के माध्यम से अरुणाचल प्रदेश की संस्कृतियों को सहेज कर नहीं रख सकते। उसकी अपनी सीमा है लेकिन हिंदी में वह काबिलियत है जो सबके बीच खड़े होकर बोलें, तो सभी सुन लेंगे। हिंदी यहां की आम जनता की जिंदगी में इतनी रची बसी है कि हिंदी के लोगों को उस भूमिका को निभाना ही होगा।

याई न्योकिर : युवा अवसर ढूंढता है, आप परदे की इस फ़िल्मी दुनिया में क्या संभावना देखते हैं?

ताई तुगुङ : युवा के पास अवसर है। इस क्षेत्र में जी-जान से लगा जाए तो बिल्कुल सफल हुआ जा सकता है। सिर्फ अरुणाचल प्रदेश ही नहीं नॉर्थ ईस्ट बहुत बड़ा बाजार है। अरुणाचल, असम, मिजोरम, नागालैंड, त्रिपुरा के पहाड़ी इलाके हैं। यहाँ की जीवनचर्या लगभग समान है। जैसे असम की बहुत समृद्ध फिल्म की परंपरा है तो असम के साथ रिलेशन बनाया जा सकता है। नॉर्थ ईस्ट के सेवन सिस्टर में अगर इंडस्ट्री क्रिएट किए जाएंगे तो मुझे नहीं लगता कि पैसों की कमी होगी। ऑपर्च्युनिटी की कोई कमी नहीं होगी। एक बात मैं यहां जोड़ना चाहूंगा- संभावनाएँ क्यों है हमारे यहाँ-क्योंकि हमारे आदिवासी लोक-साहित्य में इतनी ताजगी और मौलिकता है कि हमारे पास कंटेंट और कैरेक्टर की कमी नहीं है। चाहे आप अरैबियन फिल्म को देखिए, चाहे आप साउथ ईस्ट या किसी भी फिल्म को देखिए, दुनिया में अब कंटेंट की कमी हो गई है। लेकिन अरुणाचल प्रदेश में इतनी कहानियाँ, कथाएँ हैं कि हम बाजार को यकीन ही नहीं दिला पा रहे हैं। अगर जिस रोज यह पहल हो गई, मुझे नहीं लगता कि हमें कहीं बाहर जाने की जरूरत नहीं होगी और मुंबई जैसी इंडस्ट्री एक दिन हमारे ईटानगर में निश्चित रूप से बनेगी।

याई न्योकिर : ईटानगर जीरो किलोमीटर में आपने युवाओं पर अपना फोकस ज्यादा किया था। आगे भी आप युवाओं की मानसिकता और उनके रोजमर्रा के जीवन संघर्ष को दिखाना चाहेंगे या फिर कुछ अलग?

ताई तुगुङ : मैं शिक्षक हूँ उस दृष्टि से मैं युवाओं पर केंद्रित फिल्में बनाता रहूँगा। 'ईटानगर-जीरो किलोमीटर' पार्ट 2 मैंने लिखी है जिसमें मैंने अरुणाचल प्रदेश की शिक्षा व्यवस्था के ऊपर काम किया है। स्क्रिप्ट लगभग पूरी की जा चुकी है। इसमें भारत वर्ष के सीबीएसई सिस्टम के ऊपर काम करने की कोशिश कर रहा हूं। ऐसा

लगता है कि हमारे यहाँ जो शिक्षा की व्यवस्था या कि परंपरा है, हम लोग प्राचीन काल ही नहीं, आदिकाल के जमाने में पढ़ने और पढ़ाने का काम कर रहे है। मैं जानबूझ कर इन शब्दों का इस्तेमाल कर रहा हूँ। पूरी दुनिया डिजिटलाइज हो चुकी है। ऐसी स्थिति में हम कहाँ खड़े हैं। कॉलेज में ऐसे बच्चे आ रहे हैं कि वह बड़े तो हो गए किसी तरह, लेकिन भीतर से उनको कीड़ा खाया हुआ है। उनकी न हिंदी की बुनियाद अच्छी है, न ही अंग्रेजी की और उनको इतना भी हिम्मत नहीं है कि वे इस प्रदेश से बाहर जा कर काम करें। इस कॉन्सेप्ट को आधार बनाकर कि आखिर उनको कीड़ों ने क्यों खाया है, के सवाल को चलचित्र के माध्यम से उठा रहे हैं। मैं एक शिक्षक होने के नाते उनकी मजबूरियों को समझता हूँ तथा इन मजबूरियों को ही मैं फिल्म रूप में दर्शाने की सोच भी रहा हूँ। ऐसे युवा लोगों की ओर इशारा करके मैंने चंद पंक्तियाँ लिखी है जो आपसे साझा करता हूँ :

“हम तो जैसे कटी पतंग हैं
आसमान में आवारा उड़ने को
पंख काटे पंछी के जैसे
उड़ना चाहे पर उड़ नहीं पाते हैं।”

*(**लेखकीय परिचय :** याई न्योकिर राजीव गाँधी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के पीजीडीएफएच पाठ्यक्रम की विद्यार्थी रह चुकी हैं। ताई तुगुङ युवा फ़िल्मकार एवं लेखक हैं।)*